नहीं हुआ । भाषा के लक्षक और व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी ।"

प्रेमव्यंजना—रीतिबद्ध कवियों की भाँति इनका प्रेम न तो काम की क्रीड़ा है और न तो एक तरह की परिपाटीविहित प्रेम का कलात्मक चित्रण । इनके जीवन की प्रत्येक श्वास और हृदय की प्रत्येक धड़कन मे प्रेम की मधुर टीस और असह्य वेदना है । प्रेम की ऐकांतिक उपासना इनके जीवन का साध्य और साधन दोनो है । सहज भाव से प्रिय को आत्मसमर्पण कर देने के अतिरिक्त इनके लिये और कोई उपाय नहीं है । यहाँ किसी तरह के छल और चातुर्य के लिए स्थान नहीं है । प्रेम के सीधे और ऋजुमार्ग की एक झाँकी प्रस्तुत है—

अति सूधो सनेह को मारग है जहँ नेकु सयानप बाँक नहीं ।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ झिझकै कपटी जे निसाँक नहीं ।।

प्रेमोन्माद में डूबे हुए घनआनँद को इसकी परवा नहीं थी कि इनका प्रिय इन्हें प्रेम करे ही । प्रेम में—सच्चे प्रेम में—तो केवल प्रदान किया जाता है, आदान के लिये यहाँ कोई स्थान नहीं है । लोक तथा शास्त्र दोनों दृष्टियों से इनके प्रेम का औचित्य नहीं सिद्ध हो पाता, लेकिन इन बंधनो का अतिक्रमण कर इन्होंने अपने आदर्श स्थापित किए हैं—

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनंदघन,
प्रीति रीति विषम सु रोम रोम रमी है ।

घनआनँद का प्रेम न तो रीतिबद्ध कवियों की भाँति शरीरी है और न प्लेटोनिक प्रेम की तरह अशरीरी और वायवी । इनकी स्थिति बहुत कुछ दोनो की मध्यवर्तिनी है । घनआनँद में जितनी बेचैनी, जितनी तड़प और विह्वलता दिखाई पड़ती है वह इस काल के और किसी कवि में नहीं पाई जाती ।

घनआनँद प्रेम की कसक सहते रहे । जिसको हृदय दिया था उसने भी साथ नहीं दिया तो विरह मे उनकी हृत्तंत्री का एक-एक तार झंकृत हो गया । उनके हृदय के प्रेमविषयक संपूर्ण भाव उनकी कविता मे निःसृत होने लगे । कवितासर्जन के लिये उन्हे किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना पड़ा—

लोग हैं लागि कवित्त बनावत,
मोहि तौ मेरे कवित्त बनावत ।

और उनके प्रेम को वही सहृदय समझ सकता है जिसमे अपनेपन को विसर्जित करने की भावना है । उनके प्रेम में वासना का योग नहीं, आत्मा की विभोरता और निष्ठा है । हृदय की आँख से ही उसे देखा जा सकता है—

समझै कविता घनआनँद की,
हिय आँखिन नेह की पीर तकी ।

घनआनँद विशुद्ध प्रेमी थे । रीतिकाल के कवियों में प्रेम की अश्लीलता और बेहयाई मिलती है, घनआनँद की अभिव्यंजना ने उसे स्पर्श तक नहीं किया है ।

उनका भौतिक प्रेम आध्यात्मिक प्रेम बनकर ही उन्मुख हुआ है । संयोग-वियोग में उनके लिये 'सुजान' ही काम्य रही । घनआनंद ने सुजान को ईश्वर तथा स्वयं की आत्मा को प्रिय से वियुक्त विरहिणी ही माना । अतः स्पष्ट है कि उनके प्रेम के दो पहलू हैं—सुजान (प्रिया) और ईश्वर । सुजान की मीठी बातें एवं मुसकान तो उनके मन से उतरती ही नहीं—

वहै मुसकानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली बानि, आनि उर में अरति है ।

परंतु प्रिय के निर्मोहीपन की दशा मे वे बिसूर उठते है—

तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो लला,
मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ।।

मन (चालीस सेर का) तो ले लेते हो पर बदले में कटाक्ष (सेर का सोलहवाँ भाग छटाँक) तक नहीं देते ? प्रेम की अनुकूलता में कवि की आत्मा जड़ और चेतन का भेद स्वीकार ही नहीं करती । यह स्थिति कितनी करुण है । वे बादलो को देखकर कह उठते हैं—

घनआनँद जीवनदायक हो,
कछु मेरियौ पीर हियै परसौ ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन,
मो अँसुवान को लै बरसौ ।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि एक सहृदय 'सुजान' की बेवफाई का शिकार हो गया । घनआनँद का समस्त काव्य इसी का शिकार होने और बलि चढ़ जाने की कहानी है । और यह ऐसी कहानी है जो आँसुओं से लिखी गई है तथा भावों की भाषा मे गाई गई है । हिंदी कवियों के इतिहास मे प्रेम की वेदी पर इतनी बड़ी बलि कभी नहीं चढ़ी ।

संयोग शृंगार—स्वच्छंद काव्यधारा में घनआनँद के सौंदर्य चित्र सर्वाधिक भंगिमापूर्ण, रंगमय और रससिक्त है । घनआनँद की कविताओं के अंतःसाक्ष्य के आधार पर उनका 'सुजान' नाम की वेश्या पर अनुरक्त होना सिद्ध किया जा सकता है । इसीलिये उनका सौंदर्यांकन अपना वैशिष्ट्य रखता है । उनकी सौंदर्यचेतना को ठीक ढंग से समझने के लिये उनके उस व्यक्तिगत पहलू पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है ।

अपने प्रिय का रूपचित्र खींचने मे घनआनँद ने रीतिबद्ध कवियों की भाँति स्थूल अप्रधान यौन अंगों के आकार और व्यापार का वर्णन नहीं प्रस्तुत किया है । वे मुख्यतः प्रिय के स्निग्ध सौंदर्य पर रीझे हुए हैं । प्रिय की पात्रता प्रायः दो वस्तुओं में निहित दिखाई देती है—रूप और गुण में । घनआनँद का प्रिय इन दोनों से संयुक्त है ।

शृंगार की भावराशि इनके काव्य की अमर निधि है । घनआनंद ने अपने काव्य में शृंगार के दोनों ही पक्ष—संयोग, वियोग—को वाणी दी, किंतु उनका संयोग, वियोग की अपेक्षा मौन रहा, और वियोग मुखरित रहा । वियोग को स्वर मिले और वह गूँज उठा । घनआनँद के प्रेम में रूपलिप्सा का योग है तो, किंतु साहचर्य का उतना विस्तृत वर्णन नहीं है ।

घनआनँद सुजान के नृत्य और अभिनय पर मुग्ध होकर उसके हाथ अपनी बुद्धि बेच देते हैं और सुधि-बुधि खो देते हैं—

रूप मतवारी घनआनँद सुजान प्यारी
घूमरै कटाछि घूम करै पौन पै फिरै ।
नाच की चटक लसै अंगनि मटकि रंग,
लाड़िली अटक संग लोयन लगै फिरै ।
अभिनै निकाई निरखत ही बिकाई मति,
गति भूली डोलै सुधि सोधौं न लिहौ तिरै ।

इसी प्रकार, कवि 'सुजान' के वीणावादन पर मुग्ध होकर किस प्रकार अनुराग की सरिता में तैरने लगता है—

जान प्रबीन के हाथ को बीन है,
मों चित राग भरयौ नित राजै ।
सो सुर सौंच कहूँ नहि छाड़त,
ज्यौं ही बजावै लिएँ मन बाजै ।

संयोग शृंगार में वाणी, वेश और चेष्टा के द्वारा संभोगेच्छा के प्रकट करने से लेकर आलिंगन, चुंबन और सुरति के व्यापार तक संनिविष्ट हैं । रीतिबद्ध कवियों ने संयोग शृंगार में इन समस्त व्यापारों का बहुत ही क्रमिक और प्रचुर विवरण प्रस्तुत किया है । परंतु रीतिमुक्त कवियों का मन इन प्रसंगों में नहीं रम सका है, यहाँ तो प्रिय के साक्षात् मात्र से ही हृदय उमड़ आता है अथवा फिर उसके रूप के सौंदर्य की आभा से दिशाएँ इस तरह दीप्त हो उठती हैं कि और कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता—

चेटक रूप रसीले सुजान !
दई बहुतै दिन नेकु दिखाई ।
कौंध में चौंध भरे चख हाय !
कहा कहौं हेरनि ऐसी हिराई ।

एक तो घनआनँद को संयोग का अवसर ही कम मिला है, दूसरे जब कभी इस प्रकार का अवसर प्राप्त भी होता है तब आँसुओं की झड़ी के कारण न तो वे प्रिय को भर आँख देख पाते हैं और न अपना संदेश ही कह पाते हैं—'नैन यों रैनदिना झर लावत' । सुरति और सुरतांत के चित्रों की इनके काव्य में अल्पता है । जहाँ कहीं इस प्रकार के चित्र खींचे गए हैं वहीं पर भी मन का उल्लास ही प्रमुख रूप से व्यक्त हुआ है । घनआनँद की सुजान का एक ऐंद्रिय चित्र देखिए—

पौढ़े घनआनँद सुजान प्यारी परजंक,
धरे धन अंक तऊ मन रंक गति है ।
भूषन उतारि अंग अंगहि सम्हारि, नाना
रुचि के बिचार सों समोय सीझी मति है ।
और और लै लै राखै औरै और अभिलाखैं,
बनत न भाखैं तेई जानै दसा अति है ।
मोद मद छाके घूमैं रीझि भीजि रस झूमैं,
गहैं चाहि रहैं घूमैं अहा कहा रति है ।

यहाँ पर शारीरिक और मानसिक आकर्षण का कैसा अपूर्व संयोग है । न तो इसमें पायल और बिछिया बजने की ध्वनि है और न सिसकियों की आवाज की अस्वस्थता । फिर भी ऐंद्रिय प्रभावोत्पादकता उन चित्रों की अपेक्षा इसमें कहीं अधिक है ।

प्रेमक्रीड़ा की मनोमुग्धकारी और उल्लासपूर्ण झाँकी है—

दाँव तकै, रस रूप छकै, चितकै मति पै अति चोपनि धावै ।
चौंकि चलै, उठि छैल छलै, सु छबीली छराय लौं छाँह न छुवावै ।
घूँघट ओट चितै घनआनँद चोट चितै अँगुठाहि दिखावै ।
भावती गौ बस ह्वै रसिया हिय हाँसनि सौं सनि आँखि अँजावै ।।

विरह-विश्लेषण—घनआनँद (प्रेमी) को विश्वास है कि उनकी आहें एक न एक दिन प्रिय को प्रभावित करेंगी । कभी तो उनका रंग आएगा ही । उसे अपनी अनन्यता पर दृढ़ विश्वास है । प्रेमी को वेदना है कि आरंभ में तो प्रिय ने प्रीति की डोर जोड़ी और फिर विश्वासघात करके मुझे छोड़ गया है ।

पहले अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिरि तेह कै तोरिए जू ।
रस प्याय कै ज्याय, बढ़ाय कै आस बिसास में यौं बिस घोरिए जू ।।

घनआनँद की विरहिणी अपने आँसुओं को बादलों से अपने प्रियतम सुजान के आँगन में बरसाने को कहती है । करुणा में, वियोग में आत्मा का विस्तार होता है, दृष्टि में सार होता है । जड़ाजड़ की सीमाएँ टूट जाती हैं । विरहिणी बादलों को भी परोपकारी कहती है । हर वियोगी अपना संदेशा अपने प्रिय तक पहुँचाने के लिए अधीर रहता है । प्रेमी यह चाहता है कि उसका प्रिय उसकी आँखों के आँसू देखे, उसके उच्छ्वासों का अनुभव करे, उसकी कराह को सुने । वह अपने प्रेम को, अपने विरहोद्‌गारों को अपने प्रिय पर प्रकट करना चाहती है । घनआनंद की विरहिणी भी अपने विरहोद्‌गारों को पवन के संमुख रखकर कहती है । वह प्रिय के चरणों की धूल चाहती है, इसीलिये 'पौन' से कहती है—

बिरह बिथाहि मूरि, आँखिन में राखौं पूरि ।
धूरि तिन पायनि की, हा हा ! नेकु आनि दै ।।

विरहिणी की आत्मा बाहर से भले ही मौन है किन्तु उसके हृदय में तो अथाह सागर उमड रहा है । वह प्रिय से मिलना चाहती है—पर कैसे मिले, क्या उपाय करे, यही समस्या है—

पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं,
धरनी मैं धसौं कै अकासहिं चीरौं ।।

प्रिय की निठुरता और विश्वासघात पर विरहिणी का मर्मस्पर्शी उपालंभ है—

हाय दई ! न बिसासी सुनै कछु,
है जग बाजति नेह की डौंडी ।

प्रिय के वियुक्त हो जाने पर प्रेमी का संसार उजड़ जाता है, उसका संपूर्ण रसस्रोत सूख जाता है । कजरारी आँखों की लुनाई और मुख की गुराई समाप्त हो जाती है—

उजरनि बसी है, हमारी अँखियान देखो ।

निराशा की चरम सीमा पर पहुँचकर प्रेमी अपने दैन्य निवेदन से प्रिय के मन मे करुणा उत्पन्न करना चाहता है । कभी तो यह दैन्य केवल दैन्य मात्र होता है, अर्थात् प्रेमी अपनी व्यथा का, दुःख दर्द का, ऐसा वर्णन करता है जिससे प्रिय का मन दयार्द्र हो सके और कभी वह अपने आत्मविश्वास, साधना और टेक के बल पर प्रिय के मन मे दया उत्पन्न करने की प्रतिज्ञा करता है । वस्तुतः यह प्रतिज्ञा उसकी निराशा का ही एक रूप है जिसे काल्पनिक इच्छापूर्ति कहा जा सकता है । यथा—

कठिन कुदौय आय घिरी हौ अनंदघन,
रावरी बसाय तौ बसाय न उजारियै ।

या

'रूई दिए रहौगे कहाँ लौं बहराइबे की' ।

घनआनँद प्रेम की व्यथा से घबराते नही । वह तो उसे सहकर भी अपनी परीक्षा मे खरा उतरने का संकल्प करते है—

आसा गुन बाँधि कै भरोसो सिल धरि छाती,
पूरे पन सिंधु मैं न बूड़त सकाय हौं ।

उनके शाश्वत विरह मे भी अखंड आशावाद झलकता है । घनआनँद की कविता मे जिस प्रेमभावना का निरूपण हुआ है, उसका प्रारंभ तो भौतिक धरातल पर होता है किंतु उसकी परिणति आध्यात्मिक प्रेम मे होती है । घनआनँद के संयोगवर्णन मे इतनी मार्मिकता नहीं जितनी उनके विरहवर्णन मे है । वास्तव मे ये विरह के कवि हैं । इनके काव्य मे प्रेयसी (आत्मा) अपनी प्रेमभावना को स्वयं ही व्यक्त करती है । उसे रीतिकालीन परंपरा की भाँति किसी दूती या सखी की आवश्यकता नहीं पड़ती । घनआनँद के काव्य मे रति और संयोग के कितने ही चित्र हैं । उनमें आध्यात्मिक तत्व भी मिला है । उनका संपूर्ण काव्य उनके हृदय

की गाथा है । इनकी कविता मे शृंगार की वंशी की ध्वनि ही नहीं भक्ति की खँजड़ी भी सुनाई पड़ती है । रीतिकाल की देन होकर भी इस काल के इतर कवियों की भाँति कविता को मादक वासना के जल से इन्होंने गँदला नहीं किया और 'सुंदरतानि के भेद' को जाननेवाले घनआनँद ने 'चाह के रंग' मे डूबकर 'हिय आँखिन' से 'नेह की पीर' को 'ताक' कर अक्षुण्ण प्रेम की काव्यसाधना की है ।

निष्कर्ष—(क) स्वच्छंद कवि घनआनँद ने शृंगार के उदात्त रूप को ही अपनाया ।

(ख) घनआनँद के काव्य मे भावोद्रेक ही प्रधान है । स्यात् इसका कारण यह है कि इनकी कविता संरक्षकों के बौद्धिक विलास के लिये न होकर उनके अपने लिये थी । काव्य के रूप मे उन्हे तो अपने भावप्रसून अपनी 'सुजान' के मादक चरणों में समर्पित करने थे ।

रीतिकाल के कवियों मे भक्ति की विभोरता न थी, घनआनँद मे यह वृत्ति प्राप्य है ।

*

संपादक
डॉ० रामचन्द्र तिवारी. डॉ० रामफेर त्रिपाठी
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी